International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

प्राचीन भारतीय संस्कृति में वर्ण व्यवस्था की अवधारणा और उसका सामाजिक प्रभाव (650 ईस्वी तक): वैदिक एवं स्मृति साहित्य के संदर्भ में एक समीक्षात्मक अध्ययन

Madhurima Priyamvada

Research Scholar, Department of History, Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bihar

विस्तृत सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र प्राचीन भारतीय संस्कृति में वर्ण व्यवस्था की अवधारणा और उसके सामाजिक प्रभाव का वैदिक एवं स्मृति साहित्य के संदर्भ में समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। वर्ण व्यवस्था भारतीय सामाजिक इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं विवादास्पद संस्थाओं में से एक रही है। इसका प्रथम उल्लेख ऋग्वेद के पुरुषसूक्त (मंडल 10, सूक्त 90) में मिलता है, जहाँ चारों वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—की उत्पत्ति आदिपुरुष के विभिन्न अंगों से बताई गई है। वैदिक काल में यह व्यवस्था अपेक्षाकृत लचीली थी तथा गुण-कर्म पर आधारित थी, किंतु स्मृति साहित्य—विशेषतः मनुस्मृति—में इसे कठोर एवं जन्म-आधारित स्वरूप प्रदान किया गया। इस शोध में ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है तथा प्राथमिक स्रोतों (वैदिक संहिताएँ, ब्राह्मण ग्रंथ, स्मृतियाँ) एवं द्वितीयक स्रोतों (आधुनिक विद्वानों के शोध) के आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वर्ण व्यवस्था का स्वरूप कालान्तर में मौलिक रूप से परिवर्तित हुआ—एक लचीली सामाजिक वर्गीकरण प्रणाली से कठोर जन्म-आधारित जाति व्यवस्था में—तथा इस परिवर्तन का भारतीय समाज पर दूरगामी प्रभाव पड़ा।

मुख्य शब्द: वर्ण व्यवस्था, ऋग्वेद, पुरुषसूक्त, मनुस्मृति, स्मृति साहित्य, धर्मशास्त्र, चातुर्वर्ण्य, सामाजिक स्तरीकरण, प्राचीन भारत, वैदिक काल

1. भूमिका

प्राचीन भारतीय संस्कृति की विशिष्टतम एवं सर्वाधिक चर्चित सामाजिक संस्था वर्ण व्यवस्था रही है। यह व्यवस्था न केवल भारतीय समाज की संरचना का आधार रही, वरन् उसकी धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन को भी गहराई से प्रभावित करती रही। वर्ण व्यवस्था का प्रारम्भ वैदिक काल से माना जाता है और इसका विकास लगभग 650 ईस्वी तक विभिन्न चरणों में हुआ।

"वर्ण" शब्द का शाब्दिक अर्थ 'रंग' है, किंतु प्राचीन ग्रंथों में इसका प्रयोग सामाजिक वर्गों या श्रेणियों के अर्थ में हुआ है। वैदिक साहित्य में वर्ण की अवधारणा का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में मिलता है, जहाँ समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इसके पश्चात् स्मृति साहित्य, विशेषतः मनुस्मृति, ने इस व्यवस्था को विस्तृत रूप प्रदान किया तथा इसे धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टि से प्रतिष्ठापित किया।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य वैदिक एवं स्मृति साहित्य के आधार पर वर्ण व्यवस्था की अवधारणा के विकासात्मक स्वरूप का समीक्षात्मक अध्ययन करना तथा 650 ईस्वी तक की अवधि में इसके सामाजिक प्रभाव का मूल्यांकन करना है। यह अध्ययन निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करता है:

1. वैदिक साहित्य में वर्ण व्यवस्था की अवधारणा किस रूप में प्रस्तुत की गई?
2. स्मृति साहित्य में इस अवधारणा में क्या परिवर्तन हुए?
3. वर्ण व्यवस्था का प्राचीन भारतीय समाज पर क्या सामाजिक प्रभाव पड़ा?
4. क्या वर्ण व्यवस्था प्रारम्भ में गुण-कर्म आधारित थी या जन्म-आधारित?

2. साहित्य समीक्षा

2.1 वैदिक साहित्य में वर्ण व्यवस्था

2.1.1 ऋग्वेद में वर्ण-अवधारणा

वैदिक साहित्य वर्ण व्यवस्था के अध्ययन का सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक स्रोत है। ऋग्वेद (लगभग 1500-1000 ईसा पूर्व) में वर्ण व्यवस्था का प्रथम उल्लेख पुरुषसूक्त (मंडल 10, सूक्त 90) में मिलता है। इस सूक्त के अनुसार:

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्, बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः, पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥"

अर्थात् ब्राह्मण पुरुष का मुख था, क्षत्रिय भुजाएँ, वैश्य जंघाएँ और शूद्र पैर। इस रूपक में समाज को एक जैविक इकाई के रूप में देखा गया है, जिसके प्रत्येक अंग का अपना विशिष्ट कार्य है।

ऋग्वैदिक समाज में वर्ण व्यवस्था उतनी कठोर नहीं थी जितनी बाद में बनी। प्रारम्भिक वैदिक काल में समाज अपेक्षाकृत समतामूलक था और सहयोग एवं सभागिता पर आधारित था। ऋग्वैदिक समाज प्रारंभ में वर्ग विभेद से रहित था और सभी लोगों की समान सामाजिक प्रतिष्ठा थी।

आर्य समाज प्रारम्भ में तीन वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—में विभाजित था। शूद्र वर्ण का उद्भव बाद में हुआ, जब आर्यों का अनार्यों से संघर्ष हुआ और पराजित दस्युओं को आर्य समाज में स्थान दिया गया।

2.1.2 ऋग्वैदिक काल में वर्ण का अर्थ

ऋग्वेद में वर्ण का अर्थ मूलतः 'रंग' था, किंतु कहीं-कहीं इसका प्रयोग व्यवसाय चयन के संदर्भ में भी किया जाता था। ऋग्वैदिक काल में वर्ण जन्मजात न होकर व्यवसाय पर आधारित था। इसका प्रमाण ऋग्वेद के एक ऋषि के कथन से मिलता है: *"मैं कवि हूँ, मेरे पिता वैद्य हैं तथा मेरी माता अन्न पीसती है।"* इससे स्पष्ट है कि व्यक्ति अपनी योग्यता एवं कर्म के अनुसार किसी भी वर्ण में जा सकता था।

2.1.3 उत्तर वैदिक काल में परिवर्तन

उत्तर वैदिक काल में आते-आते ऋग्वैदिक सामाजिक संरचना टूटने लगती है। अब वर्ण व्यवस्था कर्म के आधार पर नहीं, वरन् जन्म के आधार पर निर्धारित होने लगी। वैदिक साहित्य में 'जाति' शब्द का प्रयोग भी इसी काल में प्रारम्भ हुआ। इस काल तक आते-आते समाज में असमानताएँ दिखने लगीं।

2.1.4 ब्राह्मण ग्रंथों में वर्ण व्यवस्था

ब्राह्मण ग्रंथों—शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण आदि—में वर्ण व्यवस्था का अधिक विस्तृत उल्लेख मिलता है। इन ग्रंथों में वर्णों के कर्तव्यों एवं अधिकारों का अधिक स्पष्ट विभाजन किया गया। यज्ञों में विभिन्न वर्णों की भूमिका को भी इन ग्रंथों में निर्धारित किया गया।

2.2 स्मृति साहित्य में वर्ण व्यवस्था

2.2.1 मनुस्मृति में वर्ण-अवधारणा

स्मृति साहित्य, विशेषतः धर्मशास्त्रों ने वर्ण व्यवस्था को विस्तृत एवं व्यवस्थित रूप प्रदान किया। इनमें मनुस्मृति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जिसे लगभग 200 ईसा पूर्व से 200 ईस्वी के बीच रचित माना जाता है।

मनुस्मृति में चारों वर्णों के कर्तव्यों, अधिकारों एवं व्यवसायों का विस्तृत वर्णन है:

- **ब्राह्मण:** वैदिक विद्वान, पुरोहित, शिक्षक, चिकित्सक, ज्योतिषी
- **क्षत्रिय:** शासक, प्रशासक, योद्धा
- **वैश्य:** व्यापारी, कृषक, पशुपालक
- **शूद्र:** सेवक, श्रमिक, कुटीर उद्योग

2.2.2 मनुस्मृति की विशेषताएँ

मनुस्मृति ने वर्ण व्यवस्था को दैवीय स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया, जिससे लोगों में ईश्वर के प्रति भय बना रहे तथा वे अपने वर्ण-निर्धारित कर्तव्यों का पालन करें। मनुस्मृति ने वर्णों के पारस्परिक संबंधों, विवाह-नियमों, भोजन-नियमों एवं दण्ड-विधान को भी निर्धारित किया।

मनुस्मृति के अनुसार चारों वर्णों के अतिरिक्त पाँचवें वर्ण को अस्तित्वहीन माना गया। ऐसी कठोर वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत अन्य जातियों को सम्मिलित किया जाना असंभव था।

2.2.3 अन्य स्मृतियाँ

मनुस्मृति के अतिरिक्त याज्ञवल्क्य स्मृति, नारदस्मृति, विष्णुस्मृति, गौतम धर्मसूत्र, बौधायन धर्मसूत्र एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी वर्ण व्यवस्था का विस्तृत वर्णन है। इन सभी ग्रंथों ने वर्ण व्यवस्था को और अधिक कठोर एवं व्यवस्थित बनाया।

2.2.4 महाकाव्यों में वर्ण व्यवस्था

महाभारत एवं रामायण में भी वर्ण व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। महाभारत काल में वर्ण व्यवस्था ने कठोर रूप धारण कर लिया था। महाकाव्यों में विभिन्न वर्णों के आपसी संबंधों एवं कर्तव्यों का वर्णन मिलता है।

2.3 वर्ण व्यवस्था के सामाजिक प्रभाव पर विद्वानों के मत

2.3.1 सुसान बेली का मत

सुसान बेली के अनुसार, मनुस्मृति एवं अन्य शास्त्रों ने ब्राह्मणों को सामाजिक पदानुक्रम में उच्च स्थान दिलाने में सहायता की, किंतु इन प्राचीन ग्रंथों ने किसी प्रकार से भारत में "जाति की घटना" का सृजन नहीं किया।

2.3.2 प्रियंका चौधरी का मत

प्रियंका चौधरी के अनुसार, ऋग्वेद में वर्ण व्यवस्था समाज को चार व्यावसायिक समूहों में विभाजित करती है, जबकि जाति स्थानीय उप-जातियों का प्रतिनिधित्व करती है, जो अंतर्विवाह एवं शुद्धि-अशुद्धि के द्विआधारी के माध्यम से सामाजिक पदानुक्रम को सुदृढ़ करती हैं।

2.3.3 डॉ॰ संजय कुमार का मत

डॉ॰ संजय कुमार के अनुसार, वर्ण-व्यवस्था के अनुसार निर्धारित कर्मों में कोई पाप नहीं है तथा वर्ण-धर्मों का पालन आत्मकल्याणकारी है।

2.3.4 डॉ॰ राकेश कुमार का मत

डॉ॰ राकेश कुमार के अनुसार, वर्ण व्यवस्था की शुरुआत वैदिक युग में ही मानी जाती है। ऋग्वेद के अध्ययन से पता चलता है कि जिस समय आर्य सप्तसिन्धु में निवास करते थे, तो उन्हें अनार्यों से युद्ध करना पड़ा और इस युद्ध में आर्यों

की विजय हुई। आर्यों ने अनार्यों को दास बनाया तथा उन्हें अपने समाज का अंग भी बना लिया। इस प्रकार आर्यों एवं अनार्यों में वर्ण भेद शुरू हो गया।

2.3.5 डॉ॰ प्रवेश कुमार का मत

डॉ॰ प्रवेश कुमार के अनुसार, वैदिक ग्रंथों में जब हम भारतीय समाज के मूल स्वरूप को देखने का प्रयास करते हैं तो पाते हैं कि प्राचीन भारतीय समाज-व्यवस्था अत्यंत उन्नत एवं व्यवस्थित रूप में दिखाई पड़ती है। समाज का विभाजन वर्ग के अनुसार था, लेकिन ये वर्ग कोई जन्म से ही प्राप्त हो जाए अथवा व्यक्ति को वर्ग निर्धारित कार्य में ही लगे रहना है—ऐसी कोई बाध्यता वैदिक टेक्स्ट में नहीं मिलती।

2.4 मलिक, स. (2018): वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था कठोर नहीं थी, किंतु सूत्र काल एवं महाभारत काल में यह अत्यधिक कठोर हो गई। प्रारम्भिक आर्य समाज तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) में विभाजित था। शूद्र वर्ण का उद्भव बाद में अनार्यों को समाज में स्थान देने से हुआ।

2.5 चौधरी, प. (2026): वर्ण (चार व्यावसायिक समूह) और जाति (अनेक उप-समूह) में मूल अन्तर है। वर्ण प्रारम्भ में खुली एवं गतिशील व्यवस्था थी, किंतु मनुस्मृति ने इसे जन्म-आधारित एवं कठोर बना दिया। इस परिवर्तन से सामाजिक गतिशीलता समाप्त हो गई तथा स्थायी विषमता स्थापित हो गई। ब्राह्मणों को उच्चतम एवं शूद्रों को निम्नतम स्थान दिया गया।

2.6 कुमार, न. (2013): डॉ॰ अम्बेडकर के अनुसार, मनुस्मृति सभी स्मृतियों की जननी है। स्मृतियों में वर्ण-आधारित कानूनों में स्पष्ट भेदभाव दिखता है। मनु असमानता के नियम को बनाए रखने के लिए उत्सुक था। स्मृतियाँ हिन्दुओं की आचार संहिताएँ हैं जो सामाजिक एवं धार्मिक आचार-विचार निर्धारित करती हैं।

2.7 मार, डॉ॰ र. (2018): वर्ण व्यवस्था का आरम्भ वैदिक युग में आर्य-अनार्य संघर्ष के परिणामस्वरूप हुआ। आर्यों ने पराजित अनार्यों को दास बनाकर समाज में स्थान दिया, जिससे वर्ण भेद प्रारम्भ हुआ। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में चारों वर्णों की उत्पत्ति आदिपुरुष के विभिन्न अंगों से बताई गई है।

2.8 शोध-अन्तराल

पूर्ववर्ती शोधों में वर्ण व्यवस्था के ऐतिहासिक विकास पर तो प्रकाश डाला गया है, किंतु वैदिक एवं स्मृति साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर वर्ण व्यवस्था की अवधारणा में आए मूलभूत परिवर्तनों एवं उनके सामाजिक प्रभावों का समग्र एवं समीक्षात्मक विश्लेषण अभावग्रस्त है। विशेषतः 650 ईस्वी तक की अवधि में वर्ण व्यवस्था के विभिन्न चरणों—वैदिक काल, सूत्र काल, स्मृति काल एवं महाकाव्य काल—के दौरान हुए परिवर्तनों का तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुआ है। प्रस्तुत शोध इसी अन्तराल को पूर्ण करने का प्रयास करता है।

3. शोध पद्धति

3.1 शोध-प्रारूप

प्रस्तुत शोध ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। यह गुणात्मक शोध है, जिसमें प्राचीन ग्रंथों के पाठ का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है।

3.2 आँकड़ा-स्रोत

प्राथमिक स्रोत:

- वैदिक साहित्य: ऋग्वेद (विशेषतः पुरुषसूक्त), यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद
- ब्राह्मण ग्रंथ: शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण
- स्मृति साहित्य: मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारदस्मृति, विष्णुस्मृति

- धर्मसूत्र: गौतम धर्मसूत्र, बौधायन धर्मसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र
- महाकाव्य: महाभारत, रामायण

द्वितीयक स्रोत:

- आधुनिक विद्वानों के शोध-पत्र एवं पुस्तकें
- विश्वकोश एवं संदर्भ ग्रंथ
- अकादमिक जर्नल्स के लेख

3.3 आँकड़ा-संकलन विधि

आँकड़ा-संकलन हेतु निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया गया:

1. **ग्रंथ-पाठ विश्लेषण:** वैदिक एवं स्मृति ग्रंथों के मूल पाठ का अध्ययन एवं विश्लेषण
2. **सामग्री विश्लेषण:** चयनित ग्रंथों में वर्ण-संबंधी उल्लेखों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण
3. **तुलनात्मक विश्लेषण:** वैदिक एवं स्मृति साहित्य में वर्ण-अवधारणा की तुलना
4. **द्वितीयक स्रोतों का अध्ययन:** आधुनिक विद्वानों के शोध-कार्यों का अध्ययन

3.4 आँकड़ा-विश्लेषण विधि

आँकड़ा-विश्लेषण हेतु निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया गया:

1. **ऐतिहासिक विधि:** वर्ण व्यवस्था के विकास को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझना
2. **विश्लेषणात्मक विधि:** ग्रंथों में वर्ण-संबंधी अवधारणाओं का गहन विश्लेषण
3. **तुलनात्मक विधि:** विभिन्न कालों एवं ग्रंथों में वर्ण-अवधारणा की तुलना
4. **समीक्षात्मक विधि:** प्राप्त निष्कर्षों की आलोचनात्मक समीक्षा

3.5 शोध की सीमाएँ

1. प्राचीन ग्रंथों की व्याख्या में भिन्नता संभव है
2. कुछ ग्रंथों की रचना-काल एवं रचयिता के संबंध में विद्वानों में मतभेद है
3. अध्ययन की समय-सीमा (650 ईस्वी तक) के कारण मध्यकालीन एवं आधुनिक विकास पर विस्तार से चर्चा संभव नहीं है

4. विश्लेषण एवं विवेचना

4.1 वैदिक साहित्य में वर्ण-अवधारणा का स्वरूप

वैदिक साहित्य में वर्ण व्यवस्था की अवधारणा का स्वरूप निम्नलिखित विशेषताओं से युक्त था:

4.1.1 कर्म-आधारित वर्गीकरण

प्रारम्भिक वैदिक काल में वर्ण-निर्धारण जन्म के स्थान पर कर्म एवं गुण पर आधारित था। व्यक्ति अपनी योग्यता एवं कर्म के अनुसार किसी भी वर्ण में जा सकता था। ऋग्वेद में इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है, जहाँ एक ऋषि कहता है कि वह कवि है, उसके पिता वैद्य हैं और माता अन्न पीसती है। इससे स्पष्ट है कि व्यवसाय एवं वर्ण का निर्धारण जन्म से नहीं होता था।

4.1.2 लचीलापन

वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था अत्यधिक कठोर नहीं थी। विभिन्न वर्णों के बीच गतिशीलता संभव थी। ऋग्वैदिक समाज में सभी लोगों को 'आर्य' कहा जाता था और समाज में वर्ग विभेद नहीं था। पूर्व वैदिक समाज एक समतामूलक समाज था। स्त्री-पुरुष विभेद पर आधारित नहीं था और पुत्रियों को पुत्रों के समान माना जाता था।

4.1.3 व्यावसायिक विभाजन

वर्ण व्यवस्था मूलतः व्यावसायिक विभाजन की एक प्रणाली थी, जहाँ प्रत्येक वर्ण के विशिष्ट कर्तव्य निर्धारित थे। समाज को व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए आर्य लोगों ने वर्ण व्यवस्था का सूत्रपात किया।

4.1.4 सामाजिक व्यवस्था का आधार

इस व्यवस्था का उद्देश्य समाज को व्यवस्थित रूप प्रदान करना तथा विभिन्न वर्गों के पारस्परिक सहयोग को सुनिश्चित करना था। समाज को 'पुरुष' का रूपक प्रदान कर यह दर्शाया गया कि प्रत्येक वर्ग समाज का एक अनिवार्य अंग है।

4.2 स्मृति साहित्य में वर्ण-अवधारणा का परिवर्तन

स्मृति साहित्य में वर्ण-अवधारणा में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए:

4.2.1 जन्म-आधारित वर्गीकरण

स्मृति साहित्य में वर्ण-निर्धारण जन्म पर आधारित हो गया। व्यक्ति जिस वर्ण में जन्म लेता था, वहीं उसका स्थान निश्चित हो जाता था। वर्णोत्पत्ति के जन्म संबंधी सिद्धांत का प्रतिपादन प्राचीन साहित्य से उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर किया गया।

4.2.2 कठोरता

स्मृति साहित्य ने वर्ण व्यवस्था को अत्यधिक कठोर बना दिया। वर्ण-संक्रमण लगभग असंभव हो गया। सूत्र काल में भी यह व्यवस्था धर्म और तर्क का समर्थन प्राप्त कर काफी कठोर हो गई।

4.2.3 दैवीय स्वरूप

स्मृति साहित्य ने वर्ण व्यवस्था को दैवीय स्वरूप प्रदान किया, जिससे यह अटल एवं अपरिवर्तनीय प्रतीत होने लगी। मनुस्मृति की वर्ण-व्यवस्था को उत्तम सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था बताया गया जो नैतिक बनाती है।

4.2.4 विस्तृत नियमन

स्मृति साहित्य ने प्रत्येक वर्ण के आहार-विहार, विवाह, व्यवसाय, दण्ड आदि का विस्तृत नियमन किया। मनुस्मृति में वर्ण आधारित दण्ड विधान का भी उल्लेख है, जो सामाजिक एवं न्यायिक असमानता को रेखांकित करता है।

4.3 वर्ण व्यवस्था के सामाजिक प्रभाव

वर्ण व्यवस्था का प्राचीन भारतीय समाज पर अनेक स्तरों पर प्रभाव पड़ा:

4.3.1 सामाजिक स्तरीकरण

वर्ण व्यवस्था ने समाज को चार स्पष्ट स्तरों में विभाजित कर दिया, जिससे सामाजिक विषमता स्थायी हो गई। जाति व्यवस्था के परिणामस्वरूप प्राचीन भारत में चार प्रधान श्रेणियों के अतिरिक्त अनेक उप-जातियों का उदय हुआ।

4.3.2 आर्थिक संरचना

प्रत्येक वर्ण के विशिष्ट व्यवसाय निर्धारित होने से आर्थिक संरचना में स्थायित्व आया, किंतु आर्थिक गतिशीलता भी सीमित हो गई। ब्राह्मण—वैदिक विद्वान, पुरोहित, शिक्षक; क्षत्रिय—शासक, प्रशासक, योद्धा; वैश्य—व्यापारी; शूद्र—कुटीर उद्योग, तकनीकी कार्य।

4.3.3 राजनीतिक व्यवस्था

क्षत्रियों को शासन एवं प्रशासन का अधिकार प्राप्त हुआ, जबकि ब्राह्मणों को धार्मिक एवं बौद्धिक अधिकार। राजा ब्राह्मण को उच्च स्थान देकर उसका आदर करता था।

4.3.4 धार्मिक जीवन

वर्ण व्यवस्था ने धार्मिक कर्मकांडों एवं अनुष्ठानों को वर्ण-आधारित बना दिया। कुछ धार्मिक क्रियाएँ केवल उच्च वर्णों के

लिए सुरक्षित रहीं। मनु के कानूनों में धर्मनिरपेक्ष और धार्मिक कानूनों के बीच कोई अंतर नहीं था।

4.3.5 सांस्कृतिक विकास

वर्ण व्यवस्था ने विभिन्न वर्णों की अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं के विकास को प्रोत्साहित किया, किंतु इससे सांस्कृतिक विखंडन भी हुआ।

4.3.6 सामाजिक असमानता एवं भेदभाव

वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत शूद्रों के साथ भेदभाव किया जाता था। कठोर वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत अन्य जातियों को सम्मिलित किया जाना असंभव था। चारों वर्ण अपने सामाजिक वर्ग की महिलाओं पर पूर्ण नियंत्रण रखते थे।

4.4 वर्ण एवं जाति : अवधारणात्मक अन्तर

वर्ण और जाति में मूल अन्तर यह था कि वर्ण केवल चार थे, जबकि जातियाँ अनेक थीं। वर्ण एक सैद्धान्तिक वर्गीकरण था, जबकि जाति व्यावहारिक सामाजिक इकाई थी। कालान्तर में वर्ण व्यवस्था के कठोर होने पर अनेक उप-जातियों का उदय हुआ।

तुलनात्मक विश्लेषण:

विशेषता	वैदिक काल	स्मृति काल
आधार	कर्म एवं गुण	जन्म
लचीलापन	उच्च	निम्न
वर्णों की संख्या	तीन (प्रारम्भ में)	चार
स्वरूप	व्यावसायिक	दैवीय
सामाजिक गतिशीलता	संभव	असंभव

4.5 650 ईस्वी तक वर्ण व्यवस्था का विकास

650 ईस्वी तक वर्ण व्यवस्था निम्नलिखित चरणों से गुजरी:

4.5.1 प्रारम्भिक वैदिक काल (1500-1000 ई.पू.)

- समतामूलक समाज
- तीन वर्ण
- कर्म-आधारित

4.5.2 उत्तर वैदिक काल (1000-600 ई.पू.)

- चार वर्ण
- सामाजिक असमानता का आरम्भ
- जन्म-आधारित प्रवृत्ति

4.5.3 सूत्र एवं स्मृति काल (600 ई.पू.-200 ई.स्व.)

- कठोर वर्ण व्यवस्था

- मनुस्मृति का रचना काल
- दैवीय स्वरूप

4.5.4 महाकाव्य एवं पुराण काल (200-650 ई.स्व.)

- वर्ण व्यवस्था का पूर्ण विकास
- सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में व्याप्ति

5. निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध के निष्कर्ष निम्नलिखित हैं:

1. **वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था** अपेक्षाकृत लचीली, कर्म-आधारित एवं व्यावसायिक विभाजन की प्रणाली थी। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में इसका प्रथम उल्लेख मिलता है, जहाँ समाज को एक जैविक इकाई के रूप में देखा गया। ऋग्वैदिक समाज एक समतामूलक समाज था।
2. **स्मृति साहित्य में वर्ण व्यवस्था** कठोर, जन्म-आधारित एवं दैवीय स्वरूप वाली हो गई। मनुस्मृति ने इस व्यवस्था को विस्तृत नियम प्रदान किए तथा इसे सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से प्रतिष्ठापित किया। सूत्र काल में भी यह व्यवस्था धर्म और तर्क का समर्थन प्राप्त कर काफी कठोर हो गई।
3. **वर्ण व्यवस्था का सामाजिक प्रभाव** द्वैध रहा—एक ओर इसने सामाजिक व्यवस्था एवं स्थायित्व प्रदान किया, वहीं दूसरी ओर इसने सामाजिक विषमता, असमानता एवं बहिष्कार को भी संस्थागत रूप प्रदान किया।
4. **वर्ण से जाति में परिवर्तन** की प्रक्रिया क्रमिक रही। प्रारम्भ में वर्ण एक खुली व्यवस्था थी, किंतु कालान्तर में यह बन्द जन्म-आधारित जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गई।
5. **650 ईस्वी तक** वर्ण व्यवस्था ने अपना कठोर स्वरूप ग्रहण कर लिया था तथा यह भारतीय समाज की मूल संरचना बन चुकी थी। स्मृति साहित्य में वर्ण व्यवस्था का विस्तृत विवेचन किया गया।
6. **ऐतिहासिक दृष्टिकोण से** वर्ण व्यवस्था का विकास आर्यों एवं अनार्यों के संघर्ष, सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता एवं धार्मिक प्रतिष्ठानों के प्रभाव से हुआ।

5.1 शोध के निहितार्थ

यह शोध वर्ण व्यवस्था के ऐतिहासिक विकास को समझने में सहायक है तथा यह स्पष्ट करता है कि वर्ण व्यवस्था एक स्थिर एवं अपरिवर्तनीय संस्था नहीं थी, वरन् समय एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रही। यह अध्ययन समकालीन जाति-विवाद को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने का आधार भी प्रदान करता है।

5.2 भविष्य के शोध हेतु सुझाव

1. वर्ण व्यवस्था एवं लिंग-भेद के अन्तर्संबंधों पर गहन शोध
2. विभिन्न स्मृतियों में वर्ण-अवधारणा की तुलना
3. बौद्ध एवं जैन साहित्य में वर्ण व्यवस्था की आलोचना का अध्ययन
4. वर्ण व्यवस्था एवं आर्थिक विकास के संबंधों पर शोध
5. वर्ण व्यवस्था के क्षेत्रीय भेदों पर शोध

6. संदर्भ सूची (APA शैली में)

प्राथमिक स्रोत

1. ऋग्वेद. (n.d.). *ऋग्वेद संहिता* (मंडल 10, सूक्त 90).
2. मनु. (n.d.). *मनुस्मृति.*

3. याज्ञवल्क्य. (n.d.). *याज्ञवल्क्य स्मृति.*

द्वितीयक स्रोत

1. कुमार, प. (2021). प्राचीन भारतीय ज्ञान, साहित्य, परम्परा और वर्ण, जाति. *International Journal of Multidisciplinary Education and Research*, *6*(3), 59-62.
2. कुमार, र. (2018). प्राचीन भारत में वर्ण-व्यवस्था का इतिहास. *International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT)*, *6*(1), 411-415.
3. मलिक, स. (2018). प्राचीन भारत में वर्णव्यवस्था की उत्पति एवं विकास. *International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT)*, *6*(2), 501-507.
4. कुमार, न. (2013). डॉ° अम्बेडकर एवं स्मृति साहित्य. *Golden Research Thoughts*, *3*(2), 1-4.
5. चौधरी, प. (2026). Caste. In *Dalit Studies*. Taylor & Francis.
6. *हिन्दू वर्ण व्यवस्था.* (n.d.). विकिपीडिया. https://hi.wikipedia.org/wiki/हिन्दू_वर्ण_व्यवस्था
7. *प्राचीन भारत में वर्ण-व्यवस्था का इतिहास.* (2018). IJCRT.
8. *ऋग्वैदिक समाज.* (n.d.). Drishti IAS. https://www.drishtiias.com/hindi/mains-practice-question/question-2986/pnt
9. *वर्णव्यवस्था तथा जाति प्रगुणनशीलता एवं.* (n.d.). CCS University.
10. *प्राचीन काल में वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मणों की स्थिति.* (2018, March 30). *IJSRSET*.
11. *मनुस्मृति और वर्णाश्रम व्यवस्था.* (n.d.). *Ananta Journal*.
12. *स्मृतियाँ.* (n.d.). भारतकोश. https://bharatdiscovery.org

परिशिष्ट

परिशिष्ट 'क': वर्ण व्यवस्था के विकास की समय-रेखा

काल	अवधि	वर्ण व्यवस्था की स्थिति
प्रारम्भिक वैदिक काल	1500-1000 ई.पू.	समतामूलक, तीन वर्ण, कर्म-आधारित
उत्तर वैदिक काल	1000-600 ई.पू.	चार वर्ण, जन्म-आधारित प्रवृत्ति
सूत्र काल	600-300 ई.पू.	कठोरता में वृद्धि
स्मृति काल	300 ई.पू.-300 ई.स्व.	दैवीय स्वरूप, विस्तृत नियमन
महाकाव्य काल	300-650 ई.स्व.	पूर्ण विकसित स्वरूप

परिशिष्ट 'ख': वैदिक एवं स्मृति साहित्य में वर्ण-अवधारणा की तुलना

विशेषता	वैदिक साहित्य	स्मृति साहित्य
आधार	कर्म एवं गुण	जन्म

विशेषता	वैदिक साहित्य	स्मृति साहित्य
लचीलापन	उच्च	निम्न
वर्णों की संख्या	तीन (प्रारम्भ में)	चार
स्वरूप	व्यावसायिक	दैवीय
सामाजिक गतिशीलता	संभव	असंभव
स्त्री-पुरुष समानता	उपस्थित	अनुपस्थित
दण्ड-व्यवस्था	समान	वर्ण-आधारित

परिशिष्ट 'ग': मनुस्मृति में वर्ण-धर्म

वर्ण	मुख्य कर्तव्य	व्यवसाय
ब्राह्मण	अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ, दान	विद्वान, पुरोहित, शिक्षक, चिकित्सक, ज्योतिषी
क्षत्रिय	शासन, प्रजा-रक्षण, युद्ध	शासक, प्रशासक, योद्धा
वैश्य	कृषि, व्यापार, पशुपालन	व्यापारी, कृषक, पशुपालक
शूद्र	उच्च वर्णों की सेवा	सेवक, श्रमिक, कुटीर उद्योग